Impact Factor (SJIF): 6.092 E-ISSN: 2583-1615

International Journal of Research in Academic World

Received: 19/July/2023 IJRAW: 2023; 2(8):223-227 Accepted: 28/August/2023

बौद्ध काल की मृद्भाण्डकला

*[1]डॉ0 शिवांगी राव

*[1]Assistant Professor, Department of Ancient History Culture & Archaeology, Ewing Christian PG College, University of Allahbad, Utter Pradesh, India.

सारांश

बुद्ध काल छठी शताब्दी ईसा पूर्व बताया जाता है। इस काल में भारतीय जनसंख्या संतुष्ट और आर्थिक रूप से समृद्ध थी। इस समय अवधि के दौरान व्यावसायिक गतिविधि चरम पर थी। उत्तरी काले शानदार पोत परंपरा इस बिंदु पर मनुष्य के अस्तित्व में प्रवेश करती है। इस चरित्र परंपरा की शुरुआत और विकास भारत के दूसरे नागरिक आंदोलन से जुड़ा हुआ है। भारत के इतिहास में यह सबसे महत्वपूर्ण युगों में से एक था। ऐतिहासिक और बुद्ध युग की मिट्टी के बर्तनों की परंपरा उत्तरी काले चमकीले बर्तन परंपरा का दूसरा नाम है। काले रंग की सब्जियाँ अपनी अविश्वसनीय चमक और विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण रंगीन रेस्तरां में एक महत्वपूर्ण अतिरिक्त हैं। इस मिट्टी के बर्तन का नाम उत्तर भारतीय पुरातात्विक स्थलों पर इसकी खोज के कारण पड़ा है। मंदिर, जो 500 ईसा पूर्व और लगभग 200 ईसा पूर्व के बीच के थे, उनमें तक्षशिला, हस्तिनापुर, कौशांबी और राजघाट शामिल हैं। यदि भगवान बुद्ध के शासनकाल के दौरान इस प्रकार के मिट्टी के बर्तनों का उपयोग बंद कर दिया गया होता, तो उस अनुमान में कोई समस्या नहीं होती। छठी और तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच, उत्तरी काले चमकीले मिट्टी के बर्तन आम थे। पुरातात्विक आंकड़ों के आधार पर पुरातत्वविदों जैसे डी.एच. गार्डन और आर.ई.एम. व्हीलर उत्तरी ब्लैक लस्ट्रस पॉटरी के लिए प्रस्तावित समयावधि से असहमत हैं। डी. एच. गार्डन का दावा है कि वर्तमान पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर उत्तरी ब्लैक लस्ट्रस वेयर को 400 ईसा पूर्व से पहले का नहीं माना जा सकता है। व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ नवीन वर्गों का विकास और लुहार, कुम्भकार, मनके तथा आभूषण बनाने वाले, मकान बनाने वाले शिल्पी, मिट्टी के खिलौने बनाने वाले शिल्पी आदि। आम लोग इस मिट्टी के बर्तनों का उपयोग नहीं करते थेय इसके बजाय, संभ्रांत समाज के सदस्य इसे खाने के लिए इस्तेमाल करते थे। उत्तरी काले चमकदार मृदभांड काल के दौरान लोगों का सांस्कृतिक जीवन काफी उन्नत हुआ था। जिंदगी में बहुत कुछ बदल गया है. शहरी क्रांति ने काफी भौतिक परिवर्तन लाया है।

मूल शब्दः ऐतिहासिक और बुद्ध युग, मृदभांड काल, आर्थिक रूप से समृद्ध

प्रस्तावना

छठी शताब्दी ई0 पू0 के समय को बुद्ध काल के रूप में जाना जाता है। इस समय भारतीय जनता आर्थिक रूप से सुखी और समृद्ध थी। इस काल में व्यापारिक गतिविधियां चरम पर थीं। इसी समय उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा मनुष्य के जीवन में आती है। इस पात्र परम्परा का उद्भव तथा विकास भारत में द्वितीय नागरिक क्रान्ति के साथ जुड़ा है। भारत के इतिहास में यह सबसे महत्वपूर्ण कालों में से एक था। जबकि बड़े पैमाने पर गंगा घाटी में नगरों का विकास होता है साथ ही केन्द्रीकरण की राजनीतिक सत्ता का भी स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है। सोलह महाजनपदों का क्रमिक विलय, मगध का उत्कर्ष एवं मौर्य साम्राज्य की स्थापना एवं विकास काल उत्तरी कृष्ण मर्जित पात्र परम्परा के उद्भव, विकास तथा अन्त के साथ जुड़ी है। छठी शताब्दी ई0 पू0 का समय बुद्ध से सम्बद्ध है। [1]

उत्तरी काली चमकदार मृदभाण्ड परम्परा को बुद्ध काल और प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल की मृद्भाण्ड परम्परा भी कहते हैं। अपनी अद्भुत चमक और स्पष्ट पहचान के कारण पुरातात्विक उत्खननों में काल निर्धारण में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस प्रकार के पात्र प्रारम्भ में उत्तर भारत के पुरास्थलों से मिले, इसलिए इसे यह नाम दिया गया। मार्टीमर व्हीलर के अनुसार ''भारत के पुरास्थलों पर यह पात्र परम्परा उसी प्रकार विशिष्ट है जिस प्रकार यूरोप महाद्वीप के भूमध्यसागर के तटवर्ती क्षेत्रों में 'टेरा सिगिलाटा'(ज्मततं पहपससंज) नाम की पात्र परम्परा है।''[2]

यह पात्र परम्परा सर्वप्रथम 1911–12 में इलाहाबाद के भीटा नामक पुरास्थल पर प्राप्त हुई। मार्शल को इसी प्रकार की पात्र परम्परा तक्षशिला के भीर टीले और सारनाथ से मिली है।

आज भी इन्हें उत्तरी काले चमकीले मृद्भाण्ड की संज्ञा दी जाती है। यों तो ये दक्षिण के पैठन (धरनीकोट) तक मिले हैं।[3] इन पात्रों का विस्तार उत्तर दक्षिण में 2121 किमी0 तथा पूर्व–पश्चिम में 1790 किमी0 के क्षेत्र में है। उदेग्राम इसका सबसे उत्तरवर्ती पुरास्थल स्वात घाटी में तथा सबसे दक्षिणवर्ती पुरास्थल धरनीकोट के निकट छेबरोलू है। प्रभासपाटन पश्चिमवर्ती पुरास्थल तथा सबसे पूर्ववर्ती पुरास्थल पश्चिमी बंगाल में चन्द्रकेतुगढ़ है। मध्यगंगा घाटी में उत्तर प्रदेश में इस पात्र के सबसे अधिक पुरास्थल मिले हैं।

***Corresponding Author:** डॉ0 शिवांगी राव

इस पात्र परम्परा के विस्तार को देखते हुए प्रायः विद्वान इसके नाम के 'उत्तरी' शब्द की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हैं, किन्तु यहां कहा जा सकता है कि गंगा घाटी में इसकी सघनता को देखते हुए यह नामकरण सही है। अनुमानतः इसी क्षेत्र से उद्भूत होकर इसका प्रसार अन्य क्षेत्रों में हुआ होगा।[4]

उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा से मिलते–जुलते मृद्भाण्ड आज भी उत्तर प्रदेश के निजामाबाद में बनते हैं, लेकिन इनमें चमक का आभाव रहता है, जो प्राचीन उत्तरी काले चमकीले मृद्भाण्डों पर मिलती हैं। पानी भी सोखते हैं निजामाबाद के बर्तन। वह चमक केवल मृदभाण्डों पर ही नहीं मिलती बल्कि इस काल के बने कुछ खिलौनों पर भी मिलती है।[5] इसी प्रकार कुछ विद्धानों की धारणा है कि इसका नाम 'काला' शब्द प्रयोग अनुचित है, क्योंकि इस प्रकार के चमकीले मृद्भाण्ड कई रंगों में मिले हैं। कुछ सोना तथा चांदी की चमक मिलती है। कुछ सिलेटी रंग के भी हैं, कुछ नीले और कुछ नारंगी रंग के हैं। इन विभिन्न रंगों को लाने के लिए विविध प्रकार के धातुओं का लेप में सम्मिश्रण किया जाता था। कुछ मृद्भाण्डों के टुकड़ों पर सफेद और पीले छीटे भी हैं जो इस धारणा को और पुष्ट करते हैं।[5]

इनके लेप की अलग–अलग वैज्ञानिक जाँच होना आवश्यक है।[7] कुम्हार को कोई साधारण सी वस्तु मिलाते होंगे, जिसका अभी तक ठीक से पता नहीं चला है। ऐसा लगता है कि इसमें काली चमक के लिए कोयले का चूरा उपर्युक्त लेप में मिलाया जाता था और इसे बन्द आंवे में पकाते थे। कुम्हारों का कहना है कि चाँदी की चमक भट्टी में बर्रे का बीज डालने से आ जाती है तथा सोने का रंग उपर्युक्त लेप में खली मिला देने से आ जाता है।[8]

ये एक विशेष प्रकार के मृद्भाण्ड हैं जो छठीं शताब्दी ई0पू0 से दूसरी शताब्दी ई0पू0 तक ही मिलते हैं। इनके बनाने के लिए विशेष प्रकार से मिट्टी को पानी में बार–बार छानकर एकदम बारीक कर लेते थे और उसे खूब मांड़ते थे। आटे की भांति इसे साना जाता था और जब इन प्रयोगों से मिट्टी बिल्कुल लसदार आटे की भांति हो जाती थी तो उस मिट्टी से तेज गति से घूमती हुई चाक पर पतले मृद्भाण्ड बनाते थे। एक दिन के बाद जब ये मृद्भाण्ड सूख जाती थी, तो इन मृद्भाण्डों को प्रायः कुम्हारों की स्त्रियाँ हाथ से खूब चिकना करती थी। फिर इन्हें सूर्य की किरणों में सुखाया जाता था और इन पर एक प्रकार का लेप चढ़ाया जाता था। कुम्हारों के अनुसार यह लेप कापिस मिट्टी में रेह, सिन्धुरिया, आम की छाल, खैर और गन्धक मिलाकर बनाया जाता था। भारतीय पुरातत्व विभाग के वैज्ञानिकों ने जो इस लेप खोज किया है उसकी जांच से ऐसा ज्ञात होता है कि मिट्टी, लोहे का जंग, अलमूनिया, चूना, मैगनिसिया मिलाकर यह लेप बनता था।[9] आवाँ में धुआँ देने से मृद्भाण्डों का रंग काला हो जाता है, परन्तु एक प्रकार की अद्भुत चमक किस प्रकार आ गयी है जो आंच में भी खराब नहीं होती थी। इसके बारे में ठीक से पता नहीं चलता। ये मृदभाण्ड पानी बिल्कुल नहीं सोखते। यह इनकी एक बड़ी विशेषता है जो गरम मृद्भाण्ड पर गन्धक रगड़ने से सम्भव हो जाती है।

उत्तर प्रदेश के हस्तिनापुर, कौशाम्बी और श्रावस्ती तथा महाराष्ट्र प्रदेश के बहाल आदि पुरास्थलों से उत्तरी कृष्ण मार्जित पात्र परम्परा के ऐसे नमूने प्राप्त हुए हैं जिन पर चित्रकारी मिलती है। प्रमुख अलंकरण अभिप्रायों में पट्टी अथवा धारिया (ठंदके), बिन्दु समूह (क्वजे), रेखाएं, संकेन्द्रित वृत्त (ब्वदबमदजतपब बपतबसमे), प्रतिच्छेदी वृत्त (प्दजमतेबजपदह बपतबसमे), अर्द्धवृत्तों(मउप ब्मतबपसमे), लहरिया (तल सपदमे) पाश (सववच) आदि है। अलंकरण काली, गुलाबी, पिंगल(ज्द), गहरी भूरी (क्ता ठतवूद) तथा बादामी सतह पर मिलते हैं। ये सभी चित्रण गहरे रंग से किए गये हैं।[10] कुछ मृदभाण्ड ऐसे भी मिले हैं जिनके समाश्रयवृत्त तथा बीच में एक बिन्दु है। प्रायः थालियों के बीच में उठा हुआ एक बिन्दु और चारों ओर कई वृत्त पिपरहवा के स्तूप की भाँति बने हुए दिखाई देते हैं।[11] फूल के आकार के छपे भी कई मृद्भाण्ड प्राप्त हुए हैं और एक पर ब्राह्मी का 'म' बना हुआ मिला है। ऐसा ज्ञात होता है कि मृद्भाण्डों पर फूल और 'म' के आकार किसी ठप्पे की सहायता से बनाये गये हैं। इस प्रकार के ठप्पे मृद्भाण्डों के पीछे बहुत अधिक संख्या में मिलते हैं।[12]

उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा के बर्तन अत्यन्त पतले एवं हल्के हैं। मृद्भाण्डों की औसत मोटाई के आधार पर इसे तीन भागों में मोटे, मध्यम एवं पतले में बांटा जा सकता है। मृद्भाण्ड अत्यन्त ऊँचे तापक्रम वाले आँवों में पकाये गये हैं, जिससे उनमें धातु के बने बर्तनों की तरह की सफाई और खनक मिलती है। इस पात्र परम्परा के मृद्भाण्ड अत्यन्त सामान्य ढंग के मिलते हैं। इस पात्र परम्परा में विशेष उल्लेखनीय अन्दर की ओर मुड़ी बारी या सीधे बारी की थालियां, सीधे और उन्नतोदर(ब्वदअमग) कटोरे, बाहर की ओर निकले हुए बारी तथा पनारीदार बारी के ढक्कन (स्पके), समथर कोर और कोख वाली हांड़ियाँ और छोटे आकार के कलश प्रमुख पात्र प्रकार है। इस प्रकार के मृद्भाण्डों के टुकड़े बहुत अधिक संख्या में कौशाम्बी, राजघाट तथा पटना से प्राप्त हुए हैं।

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड अभिजात्य वर्ग के व्यक्तियों द्वारा मुख्यतः भोजन करते समय प्रयोग में आती थी, ये मृद्भाण्ड स्पष्टतः जन साधारण द्वारा प्रयोग नहीं की जाती थी। सोनपुर, कुम्हरार बैराट तथा रोपड़ आदि के उत्खनन से मिले कीलक लगे या जोड़े गये (त्मअपजजमक) पात्रों से इसकी पुष्टि हो जाती है। इन पुरास्थलों से तांबे की पतली तार अथवा पिन से जोड़े गये फूटे पात्र प्राप्त हुए हैं। सम्भवतः लागत अधिक होने के कारण उत्पादन कम होता था इसलिए आपूर्ति सीमित मात्रा में होती थी।[13]

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड वानगढ़ से लेकर पश्चिम में नासिक तक मिलते हैं और तक्षशिला से उड़ीसा के शिशुपालगढ़ तक मिले हैं।[14] इससे ऐसा लगता है कि एक समय में इनका विशेष प्रचार था तथा कुछ विशेष स्थानों पर ये बनकर सारे भारत में बिकते थे। इन मृद्भाण्डों की कीमत और मृद्भाण्डों से अधिक थी क्योंकि कुछ मृदभाण्ड तांबे के तार से छेदकर जोड़े गये प्राप्त हुए हैं।

ये मृद्भाण्ड प्रायः 500 वर्ष ईसा पूर्व से लेकर 200 वर्ष ईसा पूर्व तक चलते रहे जैसा तक्षशिला, हस्तिनापुर, कौशाम्बी तथा राजघाट के उत्खनन से ज्ञात होता है।[15] इस प्रकार इनका काल विशेष रूप से नन्द और मौर्य राज्यकाल निश्चित होता है। भगवान बुद्ध के समय इस प्रकार के मृद्भाण्ड प्रायः व्यवहार में आते रहे, यदि ऐसा अनुमान किया जाये तो कुछ अनुचित न होगा।[16] ऐसा ज्ञात होता है कि शुंग काल तक इन मृद्भाण्डों का व्यवहार बन्द हो गया था। इस परिवर्तन का क्या कारण था, यह कहना कठिन है। हो सकता है इनके लेप में पड़ने वाला कोई मसाला अप्राप्त हो गया हो। उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा का भारतीय पुरातत्व में तिथि क्रम की दृष्टि से अपना एक विशिष्ट महत्व है। जब तिथि निर्धारण की रेडियो कार्बन प्रणाली प्रचलित नहीं हुई थी। तब उत्तरी भारत की विभिन्न पुरातात्विक संस्कृतियों का तिथिक्रम इसी पात्र परम्परा के आधार पर निश्चित होता था।

स्तरीकरण के आधार पर पुरातात्विक दृष्टि से तक्षशिला, हस्तिनापुर, कौशाम्बी और श्रावस्ती के उत्खननों के आधार पर उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा के तिथिक्रम को सुदृढ़ आधार मिला। तक्षशिला के उत्खनन से इस पात्र परम्परा के लगभग 22 पात्र खण्ड मिले जिसमें से 18 भीर के टीले और 17 पात्र खण्ड नीचे के स्तर से, जिससे सिकन्दर के सिक्के मिले थे। सिकन्दर के आक्रमण की तिथि प्राचीन भारत में 326 ई0 पू0 है इस प्रकार तक्षशिला के भीर टीले के उस स्तर की तिथि जिसमें सिकन्दर के सिक्के मिले थे। उसे चौथी शताब्दी ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध मानी जा सकती है। इस स्तर के नीचे का जमाव 2.20 से 2.50 मीटर था जिसे लगभग दो–तीन सौ वर्षों का समय दिया गया। यह कहा जा सकता है कि तक्षशिला में उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा का आरम्भ लगभग पांचवी शताब्दी ई0पू0 में हुआ।

हस्तिनापुर के टीला जो उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले की मवाना तहसील में है, के उत्खनन से भी उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के तिथिक्रम पर प्रकाश पड़ता है। बी0 बी0 लाल ने हस्तिनापुर के

उत्खनन से प्राप्त सामग्री को पांच सांस्कृतिक कालों में विभाजित किया है। इन सभी कालों के बीच सांस्कृतिक अन्तराल मिलता है। पांचवे काल से गयासुद्दीन बलबन का एक सिक्का मिला। चौथे काल की तिथि मथुरा के राजाओं तथा यौधेयों के सिक्कों और कुषाण सिक्कों के अनुकरण पर जारी सिक्कों के आधार पर द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से लेकर तृतीय शताब्दी के बीच निर्धारित की गयी है। तीसरे और चौथे कालों के बीच के अन्तराल को 100 वर्ष मानी गयी है। इस प्रकार तृतीय काल का अन्त तीसरी शताब्दी ई0 पू0 माना गया है। इस काल का अन्त एक भयंकर अग्निकाण्ड के फलस्वरूप हुआ था। तीसरे काल के जमाव की औसत मोटाई 2.70 मीटर मिलती है, जिसे छः उपकालों (नइ.च्मतपवके) में विभाजित किय गया है। प्रत्येक उपकाल की अवधि 50 वर्ष मानते हुए, तीसरे काल की सम्पूर्ण अवधि लगभग 300 वर्षों की मानी गयी है। इस आधार पर हस्तिनापुर में उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के तीसरे काल को छठी शताब्दी ई0 पू0 से तृतीय शताब्दी ई0 पू0 के मध्य रखा गया है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि हस्तिनापुर में छठी शताब्दी ई0 पू0 से तृतीय शताब्दी ई0 पू0 तक उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड का प्रचलन था।

कौशाम्बी का टीला जो वर्तमान कौशाम्बी जिले की मंझनपुर तहसील में स्थित है के उत्खनन से भी उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के तिथिक्रम के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है। यह उल्लेखनीय है कि कौशाम्बी के विस्तृत टीले पर यह पात्र परम्परा प्रचुर मात्रा में मिलती है। यहाँ के जमाव को पांच सांस्कृतिक काल में बांटा गया है।

कौशाम्बी का तृतीय सांस्कृतिक काल उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड का काल था। कौशाम्बी के विभिन्न सांस्कृतिक कालों के बीच किसी प्रकार का अन्तराल नहीं मिलता है। इस प्रकार कौशाम्बी में उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के तृतीय काल का समय 605 ई0 पू0 से 45 ई0 पू0 के बीच निर्धारित किया गया है।

उत्तरी काले चमकीले मृद्भाण्डों से सम्बन्धित अनेक पुरास्थल की खोज हो चुकी है और इनमें से कुछ पुरास्थलों का उत्खनन भी हो चुका है। ऐसे पुरास्थलों उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले में स्थित श्रावस्ती के टीले का उत्खनन उल्लेखनीय है। यहाँ पर उत्खनन के0के0 सिन्ह के नेतृत्व में हुआ है। उनका मत है उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड दो सन्दर्भों में मिलती है : प्रथम आरम्भिक, द्वितीय परवर्ती सन्दर्भ में। इस आधार पर उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड का समय निर्धारित किया जा सकता है। उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड का प्रारम्भिक चरण तक्षशिला, कौशाम्बी, राजघाट (वाराणसी), श्रावस्ती, वैशाली तथा राजगिरि में प्राप्त होता है। इसका परवर्ती स्वरूप चरसद्दा, रोपड़, हस्तिनापुर, उज्जैन और नवदाटोली में मिलता है। आरम्भिक पुरास्थलों जैसे कौशाम्बी, श्रावस्ती, वैशाली तथा राजगीर में इसका समय 500–300 ई0 पू0 के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। परवर्ती चरण के पुरास्थलों जैसे–रोपड़, हस्तिनापुर, कुम्हरार तथा उज्जैन में इसका प्रचलन लगभग 350 ई0 पू0 के पहले नहीं हुआ।

पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड का जो समय प्रस्तावित किया गया है, इससे डी0 एच0 गार्डन तथा आर0 ई0 एम0 व्हीलर जैसे पुराविद् सहमत नहीं हैं। उपलब्ध पुरातात्विक साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में डी0 एच0 गार्डेन के अनुसार उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड को 400 ई0 पू0 के पहले नहीं रखा जा सकता है। इसके व्यापक प्रचलन का समय चौथी नहीं बल्कि दूसरी शताब्दी ई0 पू0 प्रतीत होती है। व्हीलर के अनुसार उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के प्रचलन का समय पांचवी से दूसरी शताब्दी ई0 पू0 के मध्य माना जा सकता है। व्हीलर ने पाकिस्तान में स्थित चरसद्दा और उदयग्राम से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर उत्तर पश्चिम के परिधीय क्षेत्र में उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के प्रचलन का समय 320–150 ई0 पू0 के बीच तथा गंगा के मैदान में स्थित केन्द्रीय क्षेत्र के पुरास्थलों पर इस तिथि से कुछ शताब्दियों पहले इसके प्रचलन की सम्भावना व्यक्त की है।

रेडियों कार्बन तिथियों के सम्बन्ध में भारत, पाकिस्तान तथा नेपाल से कुल मिलाकर दो सौ से अधिक उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड से सम्बन्धित पुरास्थल प्रकाश में आ चुके हैं। जिनमें से आधे से अधिक पुरास्थल गंगा घाटी में स्थित हैं। इनमें से अधिकांश पुरास्थलों का उत्खनन भी हो चुका है। उत्खनित पुरास्थलों में से लगभग एक दर्जन से अधिक पुरास्थलों के उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड जमाव की रेडियो कार्बन तिथियां आ गयी हैं। ऐसे पुरास्थलों में रोपड़, हस्तिनापुर, अहिच्छत्र, अतरंजीखेड़ा, मथुरा, कौशाम्बी, श्रृगवेरपुर, राजघाट, हेतिमपुर(वाराणसी), कुम्हरार, राजगीर, बेसनगर, उज्जैन तथा कायथा आदि प्रमुख हैं।

रेडियों कार्बन तिथियों के आधार पर कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी ई0 पू0 के मध्य तक उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड अस्तित्व में आ चुकी थी। श्रृंगबेरपुर जो प्रयागराज जिले की सोरांव तहसील में स्थित पुरास्थल से उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के सम्बन्ध में एक उष्मा दीप्ति तिथि प्राप्त हुई है, जिसके आधार पर इस पात्र परम्परा की तिथि को 800 ई0 पू0 में रखने का प्रयास किया गया है। भारतीय पुरातत्व ये ऊष्मा–दीपित के आधार पर निर्धारित तिथियां बहुत कम हैं। अन्य देशों में इस प्रकार की तिथि प्रणाली प्रयोग के स्तर पर ही है। अतः उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड की श्रृंगबेरपुर की ऊष्मा दीप्ति को अन्तिम तिथि के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार मथुरा से प्राप्त रेडियों कार्बन तिथि अपनी तरह की अकेली है। इस प्रकार उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड को दो कालों में बांटा गया है:–

1. प्रारम्भिक उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड
2. परवर्ती उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड

यह पात्र परम्परा क्या छठी शताब्दी ई0 पू0 के पहले अस्तित्व में आ चुकी थी? यह पात्र परम्परा द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के पहले अपनी लोकप्रियता खोती जा रही थी। उस समय तक इसका प्रचलन बहुत सीमित हो गया था। इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मध्य गंगा घाटी में कुछ ऐसे क्षेत्र रहे होंगे, जहां उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड बाद की शताब्दियों में भी चलती रही। जैसे–हेतिमपुर, जो चन्दौली जिले की चकिया तहसील स्थित पुरास्थल से इस पात्र परम्परा की रेडियो कार्बन तिथि प्रथम शताब्दी ई0 पू0 ज्ञात है, जिसे पुराविदों को स्वीकार करने में संकोच होगा। यह एकाकी तिथि है। इस बात की सम्भावना फिर भी बनी रह जाती है कि यह पात्र परम्परा प्रथम शताब्दी ई0 पू0 तक कुछ क्षेत्रों में चलती रही हो।[17]

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्डों के आकार में एक प्रकार का सौन्दर्य मिलता है। इनमें भारीपन ही दिखाई देता। गोलाई लिए हुए इनके आकार से जो रेखाएं बनती हैं वे बड़ी सुन्दर हैं। ये हल्के बर्तन सबके मन को भाता रहा होगा।

इस प्रकार के मृद्भाण्डों के साथ प्रायः और कई प्रकार के मृद्भाण्ड मिलते हैं, जिससे यह ज्ञात होता है कि अलग–अलग स्तर वाले अलग–अलग कीमत के मृद्भाण्ड व्यवहार में लाते थे। हस्तिनापुर में इन मृद्भाण्डों के साथ एक प्रकार के मोटे सिलेटी रंग के मृद्भाण्ड तथा लाल रंग के मृद्भाण्ड मिले हैं। ये सिलेटी मृद्भाण्ड चित्रित धूसर मृद्भाण्डों से भिन्न थे। इनका रंग कुछ कलछौंट लिए हुए है और ये चित्रित धूसर मृद्भाण्डों से मोटे हैं। ये चित्रित सिलेटी रंग के मृद्भाण्ड सारे हैं परन्तु किसी–किसी मृद्भाण्डों के टुकड़ों पर चित्रकारी भी मिलती है। यह चित्रकारी प्रायः ऊपर के लेप के स्थान–स्थान से उखड़ जाने के कारण जान पड़ती है। इस प्रकार के मृद्भाण्डों के टुकड़े कौशाम्बी से अधिक संख्या में प्राप्त हुए हैं।[18]

धूसर रंग के मृद्भाण्डों में कसोरे, प्योले, घड़े, हण्डी, तसला, तश्तरी इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।[19] कुछ पात्रों में टोटी लगी हुई है। तश्तरियों में घेरे बने हैं जिनके बीच में गोल आकार है। कटोरे गहरे और छिछले दोनों आकार मिले हैं।

इस प्रकार कालान्तर में मृद्भाण्डों में परिवर्तन होता रहा और इसके आकार–प्रकार भी मनुष्य की आवश्यकतानुसार भिन्न होते गये।

मृद्भाण्डों के अध्ययन से देश की स्थिति का पता चलता है जो काल के प्रभाव से निरन्तर बदलती रही।

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्डका उद्भव तथा विकास भारत में द्वितीय नगरीय क्रान्ति के साथ जुड़ा है। भारत के इतिहास में यह सबसे महत्वपूर्ण कालों में से एक था, जबकि बड़े पैमाने पर गंगा घाटी में नगरों का विकास होता है। साथ ही केन्द्रीकरण की राजनीतिक सत्ता का भी स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है। सोलह महाजनपदों का धीरे–धीरे पतन, मगध का उत्कर्ष एवं मौर्य साम्राजय की स्थापना एवं विकास काल उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के उद्भव विकास तथा अन्त के साथ जुड़ा है। इस काल में नगरों का विकास हो जाता है। साथ ही साथ नगर के चारों ओर सुरक्षा प्राचीर बनने लगती है। कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रारम्भ में बाढ़ से बचने के लिए नगरों के किनारे बांध बनाये गये होंगे और कालान्तर में उपयोगिता की दृष्टि से रखकर वे सुरक्षा प्राचीर में बदल दिये गये होंगे। कौशाम्बी, पाटिलपुत्र, उज्जैन, एरण, श्रावस्ती, वैशाली, अहिछत्र आदि से सुरक्षा प्राचीर के साक्ष्य मिले हैं।[20] इसी काल में लोहे के औजार बनाने की तकनीकी के बाद व्यापक पैमाने पर लौह उपकरणों का निर्माण तथा प्रयोग सम्भव हुआ। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लौह तकनीकी की प्रधानता दिखाई देने लगी थी। लौह तकनीकी के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि कार्य में ही नहीं बल्कि घरेलू उद्योगों तथा वास्तु कला पर भी पड़ा। इस प्रकार एक अत्यन्त जटिल आर्थिक जीवन की प्रक्रिया शुरू हुई।

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड के साथ–साथ दैनिक जीवन में काम आने वाली कई प्रकार की पात्र परम्पराएं और जन साधारण द्वारा प्रयुक्त मृद्भाण्ड भी मिलती हैं। जैसे–मोटे गढ़न के अनलंकृत धूसर मृद्भाण्ड, कृष्णलेपित मृद्भाण्ड, लाल रंग के मृद्भाण्ड तथा कृष्ण लोहित मृद्भाण्ड। इन पात्र परम्पराओं में मुख्य रूप से बड़े–बड़े घड़े, मटके, तसले, नांद आदि मृद्भाण्ड मिलते हैं। इन मृद्भाण्डों के नये–नये प्रकार लोगों की बढ़ती हुई मांगों को पूरा करते थे। उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड की तुलना में इन मृद्भाण्ड की प्रचुरता इनके सहज सुलभ और उपयोगी होने का संकेत करती है। विभिन्न प्रकार के बर्तनों की बढ़ती हुई मांग से जनसंख्या वृद्धि भी परोक्ष रूप से इंगित होती है।[21]

पकी हुई ईंटों का प्रयोग बड़े पैमाने पर इस काल में होने लगता है। आवासीय घरों के प्रमाण राजघाट, कौशाम्बी आदि से मिले हैं। कमरों की औसत लम्बाई–चौड़ाई 2.26 ग 2.26 तथा 1.90 ग 2.92 मीटर है। घरों में कुएं, स्नान के लिए पकी ईंटों के चबूतरों तथा पानी निकास की सुन्दर व्यवस्था होती थी। घरों की छत को आधार देने के लिए लकड़ी के स्तम्भ लगाये जाते थे और छत बनाने के लिए मिट्टी की टाइल्स का प्रयोग होता था। पकी ईंटों को बिछाकर या ईंटों के टुकड़ों को पीटकर फर्श बनाते थे। चौके में एक चबूतरा तथा चूल्हा होता था जिसके पास सिल–लोढ़े रखने के प्रमाण मिले हैं।

इस काल में स्वच्छता तथा सफाई व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता था। नालियां पकी ईंटों की बनती थी और ढकी होती थी। मिट्टी के पाइप का भी प्रयोग होता था। घरों में बहुतायत से मृतिका वलय कूप (त्पदह ॅमसस) तथा सोख्ता गड्ढा मिलते है। जिसके द्वारा गन्दे पानी का निकास होता था। मृत्तिका वलय कूप के चारो ओर पक्की ईंटों की बनी फर्श अनेक पुरास्थलों पर मिले हैं। जावारा में 4/57 मीटर लम्बा मिट्टी की पाइप मिली थी जो मृत्तिका वलय कूप से जुडा हुआ था। तक्षशिला में भीर टीले पर एक घर से तीन कूप मिले हैं जिनसे एक सहन कक्ष में दूसरा स्नानागार में तीसरा चौके में था।

इस काल में विविध चौड़ाई की सड़के मिलती हैं, जो नगर के विभिन्न भागों के एक दूसरे से जोड़ती थी। सड़कों का उत्खनन कौशाम्बी उज्जैन आदि पुरास्थलों पर किया गया है। कौशाम्बी से राजमार्ग के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। सड़कों के ऊपर पहियों के निशान स्पष्ट रूप से मिले हैं, जिससे ज्ञात होता है कि पहियेदार वाहनों का उपयोग बहुतायत से होता था। पहियों के निशान के मध्य की चौड़ाई 1.75 मीटर है जैसा कि आधुनिक बैलगाड़ियों में भी होता है।

उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड काल में लोहे के व्यापक स्तर पर प्रयोग के संकेत मिलते हैं, जिससे लौह अयस्क को पिघलाने और प्राप्त लोहे को पीटकर उपकरण बनाने की तकनीकी में प्रगति दिखाई देती है। लोहे के उपकरणों के बड़े पैमाने पर उपयोग से तत्कालीन लोगों के आर्थिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। बाण–फलक, भाले के शीर्ष, बल्लम शीर्ष, बर्छी, कटार, चाकू, हसिया, खुरपी, कीलें, बसूला, छेनी, कड़ाही तथा दीपक आदि प्रमुख लौह उपकरण है। गागेय क्षेत्र में चूने से युक्त कड़ी जलोढ़क मिट्टी पर लोहे के बने फालों के प्रयोग से कृषि कार्य अधिक आसान हो गया। लोहे के बर्मे, बसूले, छेनियों एवं रूखानियों के निर्माण से लकड़ी की वस्तुओं को बनाने में विशेष प्रगति हुई।

लोहे की बनी वस्तुओं में विविधता के आधार पर उसके व्यापक उपयोग तथा प्रभाव का सहज अनुमान किया जा सकता है। लोहे ने सामाजिक, सांस्कृतिक विकास में विशेष योगदान प्रदान किया। लोहे के व्यापक विकास एवं प्रयोग के फलस्वरूप तांबे का प्रयोग कम हो गया तथा तांबे का प्रयोग विशिष्ट वस्तुओं तक सीमित हो गया। अंजन शलाका (।दजपउवदल तवक), अंगूठियां, मनके, चूड़ियां आदि के अतिरिक्त उनका उपयोग मुख्य रूप से आहत तथा ढले सिक्कों के निर्माण में होने लगा। इस समय चांदी के सिक्कों का भी प्रयोग होने लगा था।

नगरों के विकास तथ व्यापार में बढ़ोत्तरी से आर्थिक जीवन में जटिलता आ जाने से वस्तु विनिमय के ठोस माध्यम की आवश्यकता के निराकरण के रू‍प में सिक्कों का विकास हुआ। इस काल के अधिकांश पुरास्थलों से आहत अथवा ढले हुए सिक्के मिले हैं, जो भारत में प्राचीनतम माने जाते हैं। सिक्कों के प्रचलन के साक्ष्य उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड के मध्यवर्ती स्तरों से मिले हैं। सिक्कों के प्रचलन से इस काल में व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। तत्कालीन साहित्य में भी व्यापारियों और ब्याज पर रूपया उधार देने वाले सेठ–साहूकारों का उल्लेख छठी शताब्दी ई0 पू0 के नगरीय समाज के एक अभिन्न अंग में मिलता है। व्यापार–वाणिज्य के नियंत्रण के लिए निगमों का गठन किया जाने लगा था जो कर्मकारों की समस्याओं का भी निदान करते थे। विभिन्न भार के बाट ओर बटखरे तौलने के काम आते थे। सोनपुर, वैशाली, एरण, कौशाम्बी से सिलखड़ी, जैस्पर आदि के बने बटखरे मिले हैं।

व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ नवीन वर्गों का विकास हुआ और लुहार, कुम्भकार, मनके तथा आभूषण बनाने वाले, मकान बनाने वाले शिल्पी, मिट्टी के खिलौने बनाने वाले शिल्पी आदि।

कृषि तथा पशुपालन इस काल की जीविका की प्रमुख आधार थी। लोहे के उपकरणों के कारण काफी विस्तृत क्षेत्र में खेती की जाने लगी थी। इस काल के प्रमुख खाद्यान्नों में गेंहूं, जौ, दलहन आदि थे। लोहे के हलों के निर्माण के फलस्परूप जंगलों को काटकर खेतों में परिवर्तित कर दिया गया था। खेती की सिंचाई व्यवस्था के लिए बड़े सरोवरों तथा नहरों का निर्माण होने लगा था, जिसका प्रमाण अभिलेखों से मिलता है।

खेती के अतिरिक्त पशुपालन भी एक प्रमुख व्यवसाय था। लगभग सभी पुरास्थलों से बहुत अधिक संख्या में हड्डी के बाणाग्र मिले हैं। बहुत भारी संख्या में बाणाग्र उज्जैन में एक ही स्थान पर मिले थे जिनपर चिड़ियों के रक्त लगे थे। श्रावस्ती, कौशाम्बी, अल्लापुर आदि पुरास्थलों से भारी संख्या में हड्डी के बाणाग्र मिले हैं। मछली पकड़ने का परोक्ष साक्ष्य के रूप में जाल को डुबाने के लिए प्रयुक्त मिट्टी की बनी गोलियां मिली हैं। पशुओं की हड्डियों पर वध के निशान मिलते हैं। इस प्रकार पशुओं को केवल भार वाहन के लिए ही नहीं पाला जाता था बल्कि घी, दूध, मांस के लिए भी उनकी उपयोगिता थी। समाज का काफी बड़ा हिस्सा सम्भवतः मांसाहारी था।

मिट्टी के खिलौने तथा मूर्तियां एवं अन्य विविध वस्तुए इस काल में बहुतायत से मिलते हैं। प्रमुखता से मिलने वाली मानव आकृतियों

में मातृदेवी, मिथुन तथा दम्पत्ति प्रकार की आकृतियां हैं। पशु आकृतियां अधिक सुन्दरता से बनायी जाती थीं। हाथी व वृषभ की आकृतियां अधिक आकर्षक हैं। नाग आकृतियां भी अधिक संख्या में मिलती हैं। रथों के सुन्दर खिलौने कौशाम्बी से मिले हैं। पशु मानवीय मृण्मूर्तियां में मिली है, जिसमें मुख मानव का, शरीर पशु का है। अधिकांश मूर्तियों पर लाल रंग लगाया गया है। धूसर तथा काले रंग की आकृतियां मिली हैं। अधिकांश मूर्तियां हाथ से बनी हैं, किन्तु सांचे का प्रयोग भी होने लगा था। कुछ स्त्री मूर्तियां सुन्दर बनी हैं। इस काल में प्रस्तर कला का विशेष विकास होता है। मौर्य युगीन प्रस्तर स्तम्भ तथा उनपर पशु आकृतियां भारतीय कला के उत्कृष्ठ नमूने हैं। पत्थरों पर जो चमक मिलती है वैसी पॉलिश बाद में किसी काल की कला में नहीं मिल सकी। दीदारगंज की याक्षी अद्भुत कलाकृति है।

मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड के जमाव प्राप्त लेखरहित सिक्के ढालने के चांसों का उल्लेख किया जा सकता है। मिट्टी की बनी हुई राजमुद्राएं (मंसे), राजमुद्रांक (मंसपदहे), कुम्भकार की थापी (च्जजमतेष् क्ंइइमते) और कुम्भकार के ठप्पे (च्जजमतेष् जंउचे) भी प्राप्त हुए हैं। आरे या तीलियों वाले रथ के पहिए और विविध प्रकार के रथ के नमूने भी हैं।

उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के लोग अपनी अभिरूचि का परिचय विभिन्न प्रकार के आभूषणों के निर्माण के माध्यम से दिया है। मिट्टी, उपरत्नों, तांबे, क्रिस्टल, हाथी दांत आदि के बने मनके लगभग सभी पुरास्थलों से मिले हैं। मनकों के अतिरिक्त चूड़ियां तथा अंगूठियां भी मिली हैं। तांबे का विशेष प्रयोग चूड़ियां बनाने में किया जाता था। इसके अतिरिक्त मिट्टी, माणिक्य कांच हाथी दांत, हड्डी की चूड़ियां मिली हैं। प्रसाधन सामग्री में अंजन–शालाकाएं, लटकन, पिन, हड्डी और हाथी दांत की कंघी, नख कर्तक एवं मिट्टी का देह मर्दक या झावा (ज्मततबवजजं सिमी.तनइइमते) आदि की गणना प्रमुख पुरावशेषों में की जा सकती है।

इस काल में वस्त्रों का प्रयोग साधारण था। अनेक पुरास्थलों से तकुए, सुई, रस्सियों के टुकड़े आदि इस बात की पुष्टि करते हैं कि ये कपड़ों को बनाते थे। कुछ मिट्टी की मूर्तियों से अनुमान किया जा सकता है कि स्त्रियां साड़ी, ब्लाउज जैसे वस्त्रों का प्रयोग करती थीं।[21]

बौद्धिक धार्मिक दृष्टि से भी यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण था। इसी काल में महावीर स्वामी था गौतम बुद्ध का जन्म होता है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड काल में लोगों के सांस्कृतिक जीवन में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। जीवन अत्यन्त जटिल हो चुका था। नगरीय क्रान्ति के फलस्वरूप भौतिक जीवन काफी समृद्ध हो गया था।[22]

निष्कर्ष

भगवान गौतम बुद्ध का काल और छठी शताब्दी ई0पू0 में ही उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड परम्परा मनुष्य के जीवन में आती है। इस समय भारतीय जनता आर्थिक रूप से सुखी एवं समृद्ध थी। इसी समय व्यापारिक गतिविधियां चरम पर थीं। भारत की द्वितीय नगरीय क्रान्ति के साथ एन0बी0पी0 पात्र परम्परा

का उद्भव और विकास जुड़ा हुआ है। इसी समय बड़े पैमाने पर गंगा घाटी मे नगरों का विकास होता था। केन्द्रीकरण का राजनीतिक सत्ता का भी स्पष्ट स्वरूप दिखाई देता है। 16 महाजनपदों का क्रमिक विलय, मगध का उत्कर्ष एवं मौर्य साम्राज्य की स्थापना एवं विकास काल उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा का उद्भव, विकास एवं अन्त के साथ जुड़ी है। यही काल में महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध का उद्भव हुआ।

उत्तरी काली चमकदार मृद्भाण्ड परम्परा को बुद्ध काल प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल की मृद्भाण्ड परम्परा भी कहते हैं। अपनी अद्भुत चमक और स्पष्ट पहचान के कारण पुरातात्विक उत्खननों में काल निर्धारण में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। इस पात्र के नाम में उत्तरी (उत्तरी भारत से मिलने के कारण) काली, चमकीले आदि विशेषण लगा है। ये पात्र उत्तर भारत के अलावा भारत के सभी क्षेत्रों से मिले, काले रंग के अलावा अन्य रंगों के भी मिले हैं।

उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा के मृद्भाण्डों में वही पात्र मिलते हैं जिसका प्रयोग खाना खाते समय किया जात है। इस मृद्भाण्ड को बनाने क लिए मिट्टी को आटे की भाँति साना जाता था और तेज गति के चाक पर पतले मृद्भाण्ड बनाये जाते थे, धूप में सुखाकर इन्हें चिकना किया जाता था, और इनपर एक प्रकार का लेप लगाया जाता था, ये मृद्भाण्ड अत्यन्त पतले और हल्के हैं। ये मृदभाण्ड अत्यन्त पतले और हल्के हैं। इनमें धातु के बर्तनों जैसी खनक और सफाई मिलती है।

ये मृद्भाण्ड अभिजात्य वर्ग के व्यक्तियों द्वारा मुख्यतः भोजन करते समय प्रयोग में आती थी, ये जन साधारण द्वारा प्रयोग नहीं किए जाते थे।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड काल में लोगों का सांस्कृतिक जीवन में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी। जीवन अत्यन्त जटिल हो चुका था। नगरीय क्रान्ति के फलस्वरूप भौतिक जीवन काफी समृद्ध हो गया था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. राधाकन्त वर्मा, पुरातत्व अनुशीलन पृ0 25–30
2. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श पृ0 553, 555
3. वी0 डी0 कृष्ण स्वामी–प्राग्रेस इन प्री हिस्ट्री, एनसण्ट इण्डिया नं0 9, पृ0 68
4. राधाकन्त वर्मा, पुरातत्व अनुशीलन पृ0 25
5. वी0 वी0 लाल, एक्सकवेशन एट हस्तिनापुर आदि, एनसण्ट इण्डिया नं0 90–99 चित्र संख्या 36, नं0 41, भारत कला भवन में भी ऐसे खिलौने हैं, नं0 24, 86, 2470, 2471 इत्यादि।
6. राय गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन, पृष्ठ 34–35
7. यूनान में इस प्रकार की चमक लाने हेतु मृदभाण्डों को कई बार आंच पर चढ़ाया जाता था–जी0 एम0 रिस्टर–जरनल ब्रिटिश स्कूल ऑफ एथेनस संख्या–46 (1951) पृष्ठ 143–50
8. ये प्रयोग करके देखे गये हैं और इसमें सफलता मिली है।
9. ए0 घोष–दी पाटरी ऑफ अहिच्छत्र–एनशण्ट इण्डिया, पृष्ठ 58
10. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श पृ0 558
11. ऐसा लगता है कि इस प्रकार का स्तूप का आकार बौद्ध भिक्षुओं की थालियों में रखे भोजन को पवित्र बनाने हेतु बनाया जाता था। पिपरहवा स्तूप ऐसे ही बना है। विलियम काक्सटन पेपे–दी पिपरहवा स्तूप, जे0 आर0 ए0 एस0 1898 पृष्ठ 573
12. राय गोविन्द चन्द्र, प्राचीन भारतीय मिट्टी के बर्तन पृष्ठ 35
13. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श पृ0 558–560
14. स्थानों की विस्तृत सूची, वी0 वी0 पाल, एक्सकवेशन एट हस्तिनापुर इत्यादि, एनशण्ट इण्डिया–नं0 11 पृष्ठ 143–146, शिशुपालगढ़ का विवरण बी0वी0लाल–शिशुपालगढ़ एनशण्ट इण्डिया नं0 5 पृष्ठ 79
15. वी0 वी0 लाल–वही पृष्ठ 51
16. डी0 एच0 गार्डन का कथन है कि ये मृद्भाण्ड ई0 पू0 चौथी शताब्दी नहीं जाते, भ्रम है। यूनान के बने इस प्रकार मृद्भाण्ड इनसे नितान्त भिन्न है। उनमें यह चमक नहीं मिलती है। डी0 एच0 गार्डन दी पाटरी इण्डस्ट्रीज एनशण्ट इण्डिया नं0 10–11 पृष्ठ 175
17. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श पृ0 560–563
18. बी0 बी0 लाल–एक्सकेवेशन एट हस्तिनापुर एण्ड अदर एक्सप्लोरेशन एनशण्ट इण्डिया 10–11 पृष्ठ 53
19. बी0 बी0 लाल, वही पृष्ठ 53–62
20. राधाकान्त वर्मा, पुरातत्व अनुशीलन, पृष्ठ 28–29
21. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श, पृष्ठ 565–566
22. राधाकान्त वर्मा, पुरातत्व अनुशीलन, पृष्ठ 32
23. जे0 एन0 पाण्डेय, पुरातत्व विमर्श, पृष्ठ 578